ISSN: 2347-2723 IMPACT FACTOR : 3.3754(UIF) VOLUME - 5 | ISSUE - 1 | AUGUST - 2017

REVIEW OF LITERATURE

साम्यवाद बनाम् मार्क्सवाद :श्रीमद्भगवद्गीता और कुरुक्षेत्र के सन्दर्भ में

डॉ. विनोद कुमार
कला एवं भाषा विभाग ,लवली प्रोफ़ैशनल युनिवर्सिटी, फगवाड़ा (पंजाब)

प्रस्तावना :

साम्यवाद सम्पूर्ण संसार में सर्वदा सर्वप्रमुख का विषय रहा है। आर्थिक,सामाजिक और राजनीतिक क्षेत्र में विशेषतया जन साधारण के साथ बिना किसी भेदभाव के प्रत्येक क्षेत्र में समानता का भाव रखना ही साम्यवाद का परम् उद्देश्य और लक्ष्य है।समाज का प्रत्येक व्यक्ति यदि इस प्रकार की समतामूलकदृष्टि विकसित कर ले तोसमाज समस्त प्रकार के दुराचार, व्यभिचार आदिसे मुक्त हो अपने आदर्श स्वरूप को पा सकता है। विश्व भर में अनेक समय पर अनेक ऐसे चिन्तक, विचारक एवं महापुरुष हुए जिन्होंने अपने-अपने ढंग से इस साम्यवादी दृष्टिकोण को अपनी वाणी दी और इसे समाज में स्थापित करने का प्रयास किया।

कार्लमार्क्सउन दार्शनिकों में से है जो अपने विचार और चेतना के माध्यम से अपने समय को सर्वाधिक प्रभावित करते हैं तथा लाखों–करोड़ों प्रशंसकों के दिल पर राज करते हुए अपने जीवनकाल में ही किंवदंति बन जाते हैं।स्वभाव से भावुकवह व्यक्ति जीवन भर विचारोंकी गंगा में गोते लगाता रहा। धर्म, दर्शन, इतिहास, राजनीति, विज्ञान, मानव–व्यवहार आदि का पठन-पाठन और चिन्तन-मनन किया।अपने दीर्घएवं गहन अध्ययन के उपरांत उसने राजनीति, दर्शन, अर्थशास्त्र आदि विभिन्न क्षेत्रों में कुछ मौलिक विवेचनाएं प्रस्तुत की हैं,जिनके कारण आधुनिक दर्शनशास्त्रियों में उसका स्थान अक्षुण्ण है। उनके विचारों में साम्यता की सद्भावना का एक ऐसा सोता बहता हुआ दीख पड़ता है, जिसके कारण वह अपने समय के सबसे आधुनिक और मानवीय विचारक नजर आते हैं। सामाजिक समतावादी दृष्टि के कारण उन्हें दलित-पीड़ित श्रमिक-मजदूर वर्ग का सच्चा पैरोकार माना जाता है। मार्क्स के दर्शन के आधार पर विकसित राजनीति को आधुनिक समाजों में सर्वाधिक जगह मिलीहै।दुनिया के कई ऐसे देश हैं जहां मार्क्सवाद वहां की राजनीति की मुख्य विचारधारा नहीं है;इसके बावजूद ऐसा शायद की कोई देश होगा, जहां मार्क्स के विचार राजनीति को प्रभावित न करते हों।शोषित और दमित वर्ग के प्रति गहरी निष्ठाऔर सामान्यजन की आवाज का प्रतीक मार्क्सका स्थान अत्यन्त सम्मानजनक है।

कार्ल मार्क्स जिस साम्यवाद की कल्पना करते हैं, उसे साकार करने के लिए वह धर्म को अफ़ीम मानते हुए उससे बचने की बात करते हैं और इसका परिणाम यह होता है कि कार्ल मार्क्स के सभी अनुयायियों मेंयह प्रचारित हो गया कि मार्क्सवाद और धर्म का कोई मेल नही है। इसका स्पष्ट सा अर्थ यह निकाला गया कि मार्क्सवाद की अवधारणा में धर्म के लिए कहीं कोई स्थान नहीं है और धर्म को साथ लेकर मार्क्सवाद के स्वप्न अर्थात् साम्यवाद की स्थापना नहीं हो सकती। जो ऐसा समझते हैं कि धर्म से च्युत होकरहम सामनस्य् सामरस्य और मानववाद की संकल्पना को सच्चे अर्थों में पूर्ण कर पाएंगे तो यह मात्र एक भ्रम के अतिरिक्त कुछ नहीं क्योंकिधर्म को न तो जीवन से और न ही विचारों से निकाला जा सकता है और न ही साम्यवाद की कल्पना ही की जा सकती है।

वेददृष्टा ऋषियों-मुनियों और मनीषियों ने समता को जीवन्मुक्ति का प्रधान लक्षण स्वीकार किया है।ईशोपनिषद मेंकहा गया है-

"यस्तु सर्वाणि भूतान्यात्मन्येवानुपश्यति, सर्वभूतेषु चात्मानंततो न विजुगुप्सते।
यस्मिन् सर्वाणि भूतानि आत्मैवाभूद्विजानत:, तत्र कोमोह: क: शोक एकत्वमनुपश्यत: ।" (६,७)

जो समस्त भूतों को आत्मा में हीदेखता है तथा आत्मा को समस्त भूतों में देखता है वह किसी से भी घृणा नहींकरता।तत्वेक्ता पुरुष के लिये जिस काल में सम्पूर्ण भूत प्राणी आत्मा हीहो जाते हैं, अर्थात् जब प्राणी सबकोआत्मा ही समझने लगता है तब उस एकत्वको देखने वाले के लिये कहाँ शोक, कहाँ मोह ? ऋग्वेद के इस कथन में कितनीउदात्त भावना है-

"समानी व आकृति: समाना हृदयानि व:,समानमस्तु वो मनो यथाव: सुसहासति।" (१०/१९/१४)

इसी प्रकार अथर्ववेद में कहा गया है-

"जनं बिभ्रती बहुधाविवाचसं नाना धर्माणां पृथिवी यथौकसाम्,
सहस्रं धारा द्रविणस्य मे दुहांध्रुवेव धेनु अनपस्फुरन्ती।" (१२/१/४५)

एक राष्ट्र एक परिवार की कल्पना – यही है वास्तविक साम्यवाद, यही हैवास्तविक एकता।इस प्रकार शास्त्र की मर्यादा के अनुसार भगवत प्रीत्यर्थया लोकसंग्रह की भावना से मोह और स्वार्थ से रहित होकर, न्याययुक्त विषमताका व्यवहार करते हुए भी सबमें उपाधिदोष से रहित ब्रह्म को समान भाव सेदेखना, तथा समस्त विकारों से रहित होकर समस्त द्वंद्वों में सर्वदासमतायुक्त रहना ही यथार्थ साम्यवाद है।यही परम कल्याण – परमात्मतत्व कीप्राप्ति का साधन है।आज जिस साम्यवाद का हम ढोल पीट रहे हैं जिस अनेकतामें एकता के लिये रात दिन नारेबाज़ी कर रहे हैं – उस साम्यवाद में, उस एकतामें ईश्वर अथवा एकता तो कहीं है नहीं।जिस धर्मनिरेपेक्षता पर रात दिनगरमागरम बहसें होती रहती हैं उसमें धर्म कानितान्त अभाव होकर मात्रसम्प्रदायवाद का महत्व है।स्वार्थमूलक होने के कारण आज का साम्यवादहिंसामय हो गया है – भले ही वह हिंसा कायिक हो, मानसिक हो अथवा वाचिक हो।साम्यवाद के नाम पर राजनीति से प्रेरित और राजनेताओं द्वारा संचालितसमितियों का गठन हो जाता हैजो कागज़ों पर साम्यवाद के नोट्स बनाकर अपनेकर्तव्य की इतिश्री मान लेती हैं।इन समितियों का हर सदस्य साम्यवाद परचर्चा पर मात्र अपना ही अधिकार समझता है, भले ही अपने उस अधिकार कीप्राप्ति के लिये उसे अपने विपक्षी सदस्य अथवा दल को साम दाम दण्ड भेद किसीभी प्रकार से परास्त करना पड़े।अर्थात् अपने दल के विचारों पर अभिमान औरदूसरों का अनादर इस साम्यवाद का प्रमुख अंग हो गया है।यह साम्यवाद कानारा आजकल की दलगत राजनीति का एक प्रमुख नारा बनकर रह गया है और हर दल इसनारे से अपना स्वार्थ सिद्ध करने में लगा हुआ है।

आधुनिक साम्यवाद जिसे हम मार्क्सवाद कहते हैं, क्या कहता है, यही न कि सबको समान भोजन मिले, समानशिक्षा मिले, स्वास्थ्य के क्षेत्र में सबको समान सुविधाएँ प्राप्त हों, कोई भूखा नंगा न रहे, किसी को अस्पृश्य न समझा जाए, लिंगभेद न किया जाए। प्रत्येक मानव को मानवीय दृष्टि से देखा जाए। लेकिन ऐसा करने या होने के लिए वस्तुत: क्या होना चाहिए और क्या नहीं, क्याधारण करने योग्य है और क्या त्याज्य है; इन बिन्दुओं पर गम्भीरता के साथ विचारकरने की आवश्यकता है। सारे संसार में डंकाबजा चुके मार्क्सवाद का स्वप्न अभी तक स्वप्न ही बना हुआ है और विडम्बना यह कि स्थिति समय के साथ साथ और भी विषमतापूर्ण होती जा रही है। कारण यह है कि आज व्यक्ति के जीवन में तत्वज्ञान कीअपेक्षा भौतिक सुखों का महत्व अधिक है और तथाकथित मार्क्सवादी स्वयंसिद्ध व्याख्याकारों द्वारा धर्म और तत्त्व को समझे बिना किनारे कर दिए जाने का परिणाम हैजबकि श्रुतिसम्मत साम्यवादतत्वज्ञान और ईश्वरप्राप्ति के लिये किया गया एक उपाय है।ऐसी स्थिति मेंराग-द्वेष, मान-अपमान, लाभ-हानि, जय-पराजय, शत्रु-मित्र, निंदा-स्तुति, सुख-दु:ख जैसे द्वंद्वों के लिये कोई स्थान नहीं रहता।

शास्त्रसम्मत साम्यवाद में न अहंकार है, नममता मोह, और न ही लोभ, यदि कुछ है तो वह है मात्र कल्याण प्राप्ति की वहउदात्त भावना जिसके रहते सबमें स्वत: ही समभाव बन जाताहै,जहाँ कायिक, वाचिक या मानसिक किसी प्रकार भी किसी का कोई अहित हो ही नहीं सकता, क्योंकिभौतिक सुख या स्वार्थ की कोई भावना ही वहाँ नहीं रहती।वही साम्यवाद गीताको मान्य है। "सह वीर्यं करवावहे" तथा "सं वो मनांसि जानताम्" की उदात्तभावना यही है।सबमें इस प्रकार का समभाव रखने वाले व्यक्ति को गीता मेंयोगी कहा गया है

सर्वभूतस्थमात्मानं सर्वभूतानि चात्मनि ।इक्षते योगयुक्तात्मा सर्वत्र समदर्शन: [६.२९]

योग द्वारा स्वयं को वश मेंकरने वाला योगी क्योंकि जीवमात्र में समदर्शी हो जाता है इसलिये स्वयं कोप्राणिमात्र में तथा प्राणिमात्र के दु:ख को स्वयं में अनुभव करता है।ऐसायोगी सबके साथ यथायोग्य सद् व्यवहार करता हुआ नित्य निरन्तर सभी में अपनेस्वरूपभूत एक ही अखण्ड चेतन आत्मा को देखता है,यही समदृष्टि है।जैसे वायु तेज, जल और पृथिवी आकाश से ही उत्पन्न हैं, आकाश

ही उनका परमआधार है, वे सब आकाश के ही एक अंश में स्थित हैं, और आकाश ही उन सबमेंव्याप्त है, उसी प्रकार समस्त भूत आत्मा से ही उत्पन्न हैं, आत्मा ही उनकापरम आधार है, वे सब आत्मा में ही स्थित हैं, और आत्मा ही उन सबमें व्याप्तहै | इस प्रकार एकमात्र सर्वव्यापी अनन्त चेतन आत्मा से भिन्न कुछ भी नहींहै। इस प्रकार की समानता ही सब भूतों मेंआत्मा को देखना और सब भूतों कोआत्मा में देखना है।यह सोचना कि समस्त क्रियाएँ मेरी ही कल्पना हैं औरमैं परमात्मा से सर्वथा अभिन्न हूँ– समस्त जगत को आत्ममय देखना है।

इस प्रकार समता का सम्बन्ध प्रधानतया आन्तरिक भावों से है, सर्वत्रसमदर्शन से है – समवर्तन से नहीं।इस समता का रहस्य इतना गूढ़ है कि किक्रिया और व्यवहार में भेद रहते हुए भी इसमें कोई बाधा नहीं आने पाती।देशकाल जाति और पदार्थों की भिन्नता के कारण बाह्यव्यवहार में भिन्नता तोन्यायसंगत और आवश्यक है।देश काल जाति और कुटुम्ब का अभिमान त्याग कर सबकीसमभाव से सेवा करना ही वास्तविक साम्यवाद है।जो सर्वत्र समदृष्टि है व्यवहार में अपना पराया होते हुए भी जो सर्वत्रसमबुद्धि रहता है, जिसका समष्टिरूप समस्त संसार में आत्मभाव है वही सच्चासाम्यवादी है।गीता में कहा गया है-

इहैव तैर्जित: सर्गो येषां साम्ये स्थितं मन: ।
निर्दोषं हि समं ब्रह्मा तस्माद् ब्रह्माणि ते स्थिता: [५.१९]

समभाव में स्थित मन वाले जीवित अवस्था में ही सृष्टि-विजय कर लेते हैं, अर्थात् मुक्त हो जाते हैं।क्योंकि ब्रह्म पक्षपातरहित तथा समदर्शी है, इसलिये उसका अनुकरण करने वाले उसी में स्थित होते हैं।जैसे किसी भी अंग में चोटलगने पर या उसकी संभावना होने पर मनुष्य उसके प्रतीकार की चेष्टा करता हैउसी प्रकार समतावादी ज्ञानी पुरुष किसी भी जीव अथवा समुदाय पर विपत्तिपड़ने पर उसके प्रतीकार की यथायोग्य चेष्टा करता है | यही कारण है कि इसप्रकार से जिनकी सर्वत्र सम बुद्धि हो जाती है वे इसी जन्म में संसार कोजीतकर जन्म मरण के चक्र से मुक्त हो जातेहैं।

सत्व, रज, तम इन्हीं तीन गुणों में राग द्वेष मोहादि समस्त दोष समाहितहैं।समदृष्टि रखने वाला इन तीनों ही गुणों से रहित हो जाता है-

"अहंसर्वस्य प्रभवो मत्त: सर्वं प्रवर्तते।इति मत्वा भजन्ते मां बुधाभावसमन्विता: ॥" (१०/८)

इस समस्त जगत को ईश्वर से व्याप्त देखने वालापुरुष ही समतावादी होता है "ईशावास्यमिदं सर्वं यत्किंच जगत्यां जगत्।" वास्तव में समता ही सर्वोच्च न्याय है, न्याय ही सत्य है, सत्य परमात्मा कास्वरूप है, और जहाँ परमात्मा है वहाँ नास्तिकता, अधर्म, काम, क्रोध, लोभ, मोह, कपट, हिंसा आदि दुर्गुणों के लिये स्थान ही नहीं रहता।वहाँ सम्पूर्णअनर्थों का सर्वथा अभाव होकर स्वत: ही सद्गुणों का विकास हो जाता है | समता अमृत है तो विषमता विष।सर्वत्र परमात्मबुद्धि होने के कारण अत्यन्तविलक्षण स्वभाव वाले मित्र, शत्रु, सज्जन पापी आदि के आचरण स्वभाव व्यवहारआदि के भेद का जिस पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता, जिसकी बुद्धि में किसी समयकिसी भी परिस्थिति में, किसी भी निमित्त से भेद भाव नहीं आता, जो शत्रु सेद्वेष नहीं रखता न ही मित्र से पक्षपात करता है, जो मान में उन्मत्त नहींहोता और अपमान से कर्तव्य विमुख नहीं होता, शीतोष्ण सुख दु:ख सभी अवस्थाओंमें समान रहता है वही समबुद्धि होता है। उसके मन में समस्त भूतों के प्रतिस्वार्थ रहित स्वाभाविक मैत्री व दया का भाव होता है,वह व्यक्ति पूर्णकाम हो जाता है। वह प्रत्येकअवस्थामें सन्तुष्ट रहता है।यही कारण है कि उसमें किसी भी प्रकार केदुर्गुण अथवा दुराचार की संभावना नहीं रहती।

गीता का साम्यवाद सर्वत्र ईश्वर के दर्शन कराता है।इसमें पगपग पर धर्म की पुष्टि तथा अहिंसा का प्रतिपादन होता है।स्वार्थका इसमेंलेश भी नहीं है। इसमें कहीं भी आन्तरिक भेद न होकर सर्वत्र आत्मा कोअभिन्न देखने की शिक्षा है।इसका लक्ष्य है अभिमानशून्यता के द्वाराआध्यात्मिक सुख का अनुभव करके ईश्वर को प्राप्त करना।यदि आज के साम्यवादीगीता के समतामूलक सिद्धांत का एक अंश भी अपना लें तो ऊँच-नीच, छुआ-छूत, अपना-पराया जैसे समस्त झगड़े बहुत सीमा तक समाप्त हो जाएँ।प्राणिमात्रसुख व शान्ति का जीवन व्यतीत करसके तथा हमारे मनीषियों की एक समान मन ववाणी होने की कामना पूर्ण हो जाए। श्री श्री रविशंकर जीकहते हैं किआधुनिकसाम्यवाद के प्रणेता कार्ल मार्क्स, लेनिन एवं माओत्से तुंग के समय से भीकाफी पहले भारतवर्ष में एक ऐतिहासिक महापुरुष का प्रादुर्भाव हुआ था, जिन्होंने न केवल गरीब, असहाय एवं दलितों पर होने वाले अत्याचारों का विरोधकिया, उनके हितों के लिए संघर्ष किया बल्कि तत्कालीन धार्मिक पाखंड एवंथोथे कर्म कांडों का भी विरोध किया और बदले में समाज में उचित रीति रिवाजोंके प्रचलन के लिए लोगों को प्रेरणा दी। वह महापुरुष थे श्री कृष्ण,जिनकोहिन्दू परायण जनता भगवान का अवतार मानती है। जैसा कि सर्वविदित है साम्यवादकी मूलभूत धारणा

है, मनुष्य मनुष्य सब समान हैं, इनमे ऊंच-नीच का कोई भेदनहीं है और जो समाज के कमजोर तबकों पर अत्याचार करता है, उसे सजा मिलनी हीचाहिए। इसके साथ ही हमारी कोशिशहो कि हम एक ऐसे समाज का निमार्ण कर सकें, जिसमे स्वार्थपरकता, एक ही व्यक्ति अथवा परिवार का निरकुंश एवं ठाट-बाट काशासन नहीं हो। न ही किसी तरह का उत्पीडन हो। श्री कृष्ण ने अपने काल मेंयही सब किया। उनके जीवन से हमें यह शिक्षा मिलती है कि कैसे उन्होंने आज से ५०००साल पहले इन सिद्धान्तों एवं विचारों के प्रति अपनी प्रतिबद्धतादर्शायी थी।

गीताधर्म और मार्क्सीवादशीर्षकअपनेआलेखमेंस्वामी सहजानन्द सरस्वतीकहतेहैंकिमार्क्स का साम्यवाद भौतिक होने के कारण हलके दर्जे का है, तुच्छ है गीताके आध्यात्मिक साम्यवाद के मुकाबिले में। गीता में प्राय: बीस जगह या तो सम शब्द का प्रयोग मिलता हैया उसी के मानी में तुल्य जैसे शब्द का प्रयोग। दूसरे अध्याय के३८वें तथा४८वें, चौथे के २२वें, पाँचवें के १८-१९वें, छठे के ८, ९, १३, २९, ३२, ३३वें, नवें के २९वें, बारहवें के १३, १८वें, तेरहवें के ९, २७, २८वें, चौदहवें के २४वें तथा अठारहवें के ५४वें श्लोकों में सम, समत्व या साम्यशब्द आया है। किसी-किसी श्लोक में दो बार भी आया है। चौदहवें के २४वेंश्लोक में सम के साथ ही तुल्य शब्द भी आया है और २५वें में सिर्फ तुल्यशब्द ही दो बार मिलता है।इनमें केवल छठे के १३वें श्लोक वाला सम शब्द 'सीधा' (Straight) के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। इसलिए उसका साम्यवाद सेकोई भी ताल्लुक नहीं है। शेष सम शब्दों या उन्हीं के अर्थ में प्रयुक्ततुल्य शब्दों का साम्यवाद से संबंध जरूर जुड़ जाता है। यदि असक्त, अनासक्त, परित्यागी या परित्याग आदि शब्दों को, जो सम के ही अर्थ में - उसी अभिप्रायसे ही - प्रयुक्त हुए हैं, भी इसी सिलसिले में गिन लें; तब तो गीता केअंग-प्रत्यंग में यह बात पाई जाती है। पाँचवें अध्याय के १८-१९ - दो - श्लोकों में जो कुछ कहा है वह तो दर्शन या ज्ञानात्मक ही है।क्योंकि वहाँ साफ ही लिखा है कि पंडित लोग समदर्शी होते या सम नाम की चीजको ही देखते हैं, 'पंडिता: समदर्शिन:', 'साम्ये स्थितं मन:।' छठे अध्याय के८-९श्लोकों में भी 'समलोष्ठाश्मकांचन:', 'समबुद्धिर्विशिष्यते' के द्वाराकुछ ऐसा ही कहा है।

श्री अरविन्द जी गीता-प्रबन्ध में अपना मत प्रकट करते हुए कहते हैं कि भारतीय संस्कृति में जिस करुणा की बात की गई है वह आर्य योद्धाओं के शौर्य का प्राण होती है, जो किसी मरे को नहीं मारा करती , बल्कि दुर्बल,दीन ,पीडित,पराभूत ,आहत और गिरे हुए की सहायता और रक्षा करतीहै । परंतु वह भी दैवी करुणा की है जो बलशाली पीड़क और धृष्ट अत्याचरी कोमार गिराती है। [गीता-प्रबन्ध, पृ. ५७] और यही साम्यवादी अथवा मार्क्सवादी अवधारणा का भी प्रयोजन है।

श्रीमद् भगवद्गीता में दृष्ट साम्यदृष्टि आध्यात्मिक आधार पर अवस्थित है जबकि मार्क्सवादी अवधारणा धर्म को अलग रखकर साम्यवाद के भौतिक तत्व पर अधिक अवलम्बित दीख पड़ती है, लेकिन यह अन्तर केवल उपरी है; अन्त:पक्ष इससे कुछ भिन्न है। मार्क्सवाद अनिश्वरवादी नहीं है और न ही धर्म के अस्तित्व को अस्वीकार ही करता है। उनका उद्देश्य तो मात्र इतना है कि धर्म मनुष्य को भाग्यवादी बना देता है, जो उसे किसी भी अवस्था में स्वीकार नहीं क्योंकि यहीं से शोषण, अन्याय और असमानता का प्रारम्भ होता है। मार्क्सवाद का असली काम निरीश्वरता का प्रचार करना नहीं है। उसका तो काम शोषितों एवं पीड़ितों को, कमानेवालों को शिक्षित तथा वर्ग चेतनायुक्त करना है। जो लोग मार्क्सवाद को धर्म का विरोधी कहते हैं शायद उन्हें गीता-प्रदत्त धर्म के वास्तिवक मायने अभी तक समझने में समर्थ नहीं हो पाए। स्वामी सहजानन्द सरस्वती जी का भी यही कथन है कि गीता में जो धर्म बताया गया है वह तो वर्तमान धर्म से जुदा ही है इसलिए उसके साथ धर्म का विरोध नहीं है।[स्वामी सहजानन्द सरस्वती, ज्योतिकलश, पृ.२२९]

एक स्थान पर लेनिन पादरी, पुरोहितों तक को अपनी पार्टी में लेने की बात करते हैं बशर्ते कि उनका प्रधान कर्म धर्मप्रचार न होकर पार्टी के कार्यक्रम को पूरा करना हो, तो फिर उन पर धर्म अथवा ईश्वर का अविश्वासी होने का आरोप स्वयं निराधार हो जाता है। बात लेवल इतनी है कि युगों-युगों से धर्म को जिस ढंग से व्याख्यायित प्रचारित एवं धर्म के तथाकथित स्वयंभू ठेकेदारोंने एक साधन बना दुरुपयोग किया है; उसी खतरे को देखते हुए मार्क्सवाद धर्म को अलग रखने की बात करते रहे हैं।

वास्तिवक साम्यवाद की स्थापना के लिए समाज में हो रहे प्रत्येक प्रकार के भेदभाव को नष्ट कर समाजवाद स्थापित करनी होगी, लेकिन दिनकर के शब्दों में जब तक सभी मनुष्यों में सुख-भाग सम नहीं होगा; तब तक यह स्थिति संभव नहीं-

शांति नहीं तब तक जब तक, सुख-भाग न नर का सम हो,
नहीं किसी को बहुत अधिक हो, नहीं किसी को कम हो."[कुरुक्षेत्र,सर्ग,२ पृ.९१]

व्यक्तिगत सुखों की प्राप्ति कोई मुश्किल और बड़ा काम नहीं, कठिन और बड़ा काम तो संसार के सभी मनुष्यों के सुख के लिए कर्म करना होता है। काव्यकृति कुरुक्षेत्र की रचना करने वाले हिन्दी के सुप्रसिद्ध कवि अपनी साम्यवादी दृष्टि के लिए ख्यात हैं जिन्होंने महाभारत के युद्ध को आधार बनाकर आधुनिक सन्दर्भ लेते हुए युद्ध की अनिवार्यता के प्रश्न को इन शब्दों में सामने रखा है-

युद्ध को तुम निन्द्य कहते हो मगर, जब तलक हैं उठ रही चिंनगारियाँ
भिन्न स्वार्थों के कुलिश-संघर्ष की, युद्ध तब तक विश्व में अनिवार्य है[कुरुक्षेत्र,सर्ग २,पृ.१९]

'कुरुक्षेत्र' दिनकर के समग्र उपनिवेशवाद विरोधी काव्य चिंतन का भावबंध है जिसमें उपनिवेशवाद का आर्थिक शोषण मुख्य पक्ष है-

"सुखसमृद्धि का विपुल कोष, संचित कर कल, बल, छल से,
किसी क्षुधित का ग्रासलूट, धन लूट किसी निर्बल से,
हिलो, डुलो मत, हृदय रक्त, अपना मुझको पीनेदो,
अचल रहे साम्राज्य शांति का जियो और जीने दो."[कुरुक्षेत्र,सर्ग ३,पृ.२२]

गीता में जिस युद्ध के लिए कृष्ण अर्जुन को प्रेरित कर रहे हैं वह व्यक्तिगत बदले की भावना अथवा वैक्तिक सुख और साधनों की प्राप्ति के लिए नहीं बल्कि धर्म, सत्य और सामाजिक भावना के लिए न्याय स्थापना के लिए है।

दिनकर जी भी यही मानते हैं कि यह युद्ध कुछ व्यक्तियों के लिए नहीं था बल्कि इसका अन्तिम लक्ष्य समस्त मानव-समाज को सुख प्रदान करना था, जो एक कठिन कार्य होता है। कुरुक्षेत्र में सामाजिकता की इस भावना को इन शब्दों में पिरोया है

इस विवित्क्त आहत वसुधा को अमृत पिलाना होगा,
अमित लता-गुल्मों में फिर से सुमन खिलाना होगा।
हरना होगा अश्रु-ताप हत-बन्धु अनेक नरों का,
लौटाना होगा सुहास अगणित- विषण्ण अधरों का। [कुरुक्षेत्र,सर्ग ७,पृ.१२३]

इसलिए मनुष्य को केवल अपने व्यक्तिगत सुख-दुख को न देखकर समस्त समाज के दुखदर्द को दूर करने का उपक्रम करना चाहिए; यही समाजवाद का वास्तविक उद्देश्य है। कवि दिनकर कृत कुरुक्षेत्र में भीष्म युद्धिष्ठिर से कहते हैं

निजको ही देखो न युद्धिष्ठिर, देखो निखिल भुवन को ।
स्ववत् शान्ति-सुख की ईहा में, निरत व्यग्र जन-जन को।। [कुरुक्षेत्र,सर्ग ७, पृ.१०५]

मनुष्य के संघर्ष से बचा कर निकलने की प्रवृति के कारण अर्जुन की तरह त्याग, तप और भिक्षा मांग कर जीवन यापन करने की बात पर कहा गया है-

त्याग, तप भिक्षा ? बहुत हूँ जानता मैं भी, मगर, त्याग, तप, भिक्षा, विरागी योगियों के धर्म हैं;

संकटकाल में वीरों का मात्र एक ही धर्म है और वह है हाथ में शस्त्र उठाकर युद्धभूमि में प्रस्तुत्त हो जाना। और यदि वह ऐसे समय में भी पाप और पुण्य के संशय में उलझा रहे तो यह कदापि श्रेयस्कर नहीं। क्योंकि-

पातकी न होताहै प्रबुद्ध दलितों का खड्ग,पातकी बताना उसे दर्शन की भ्रान्ति है,
शोषण की श्रृंखला के हेतु बनती जो शांति,युद्ध है यथार्थ में व भीषण अशांति है
सहना उसे ही मौन हार मनुजत्व को है,ईश की अवज्ञा घोर,पौरुष की श्रांति है।
[कुरुक्षेत्र,सर्ग ३,पृ.३२]

लेकिन यह तुम जैसे वीरों के लिए कदापि शोभा और श्री का कारण नहीं हो सकता-
बद्ध, विदलित और साधनहीन को है उचित अवलम्ब अपनी आह का;
गिड़गिड़ाकर किन्तु माँगे, भीख क्यों वह पुरुष, जिसकी भुजा में शक्ति हो ?
[कुरुक्षेत्र,सर्ग,२,पृ.१९]

कवि दिनकर की धारणा है कि अन्तिम उद्देश्य मात्र भौतिक साम्यवाद नहीं बल्कि अध्यात्मिक साम्यदृष्टि है जो मानवता का परम् लक्ष्य है, जो आत्मत्याग और कामनाओं को सीमित कर ही पाया जा सकता है। तभी ऐसा युग आएगा जब शोषण, अनाचार और अत्याचार समाप्त होगा-

मनुज के श्रम के अपव्यय की प्रथा रुक जाए,

सुख-समृद्धि-विधान में नर के प्रकृति झुक जाए[कुरुक्षेत्र,सर्ग,६,पृ.८४]

और साम्यवाद के इसी भाव के लिए ईश्वर से प्रार्थना करता हुए दिनकर जी पूछते हैं-साम्य की वह रश्मि स्निग्ध उदार, कब खिलेगी विश्व में भगवान। कवि दिनकर ने अपनी रचना कुरुक्षेत्र में कहा है कि गीता का निष्काम कर्म व्यक्तिगत स्वार्थ नहीं अपितु सामाजिक सुख और न्याय की स्थापना के लिए अत्यन्त आवश्यक एवं कल्याणकारी है।–

बुला रहा निष्काम कर्म वह, बुला रही है गीता।
बुला रही है तुम्हे आर्त हो मही समर संभीता।[कुरुक्षेत्र,सर्ग ७,पृ.१२२]

कवि की संकल्पना है कि धरती पर ऐसी व्यवस्था बनेगी-

श्रेय होगा मनुज का समता-विधायक ज्ञान, स्नेह-सिन्चित न्याय पर नव विश्व का निर्माण।
एक नर में अन्य का नि:शंक, दृढ़ विश्वास, धर्मदीप्त मनुष्य का उज्ज्वल नया इतिहास।
समर शोषण, ह्रास की विरिदावली से हीन, पृष्ठ जिसका एक भी होगा न दग्ध मलीन।
मनुज का इतिहास, जो होगा सुधामय कोष, छलकता होगा सभी नर का जहां सन्तोष।
[कुरुक्षेत्र,सर्ग ६, पृ.८४]

श्रीमद्भगद्गीता का मर्म जानने वाले इस बात को बेहतर समझते हैं कि धर्म एक निर्पेक्ष जीवन मूल्य है और यह साम्यदृष्टि पर अवलम्बित है। कुरुक्षेत्र में साम्य के लिए ही शंखनाद होता है। विषमता और अन्याय ही इनकी दृष्टि में सभी क्लेशों और युद्धों की जड़ है और यही अवधारणा आधुनिक मार्क्सवादी दर्शन की भी है। गीता मनुष्य को सदा निर्भयता का सन्देश है।वस्तुत: गीता साम्यवाद की आधारभूत पीठिका है औरगीताधर्मको सार्वभौमधर्मसारेसंसार काधर्म-माननेऔर कहने में लेशमात्र भी आशंका नहीं। स्वयं योगेश्वर कृष्ण का श्रीमद्भगद्गीता के चतुर्थ अध्याय में दिया गया यह वचन सामरस्य, सामनस्य और सामंजस्य की दृष्टि से युक्त साम्यवाद का अपूर्व उद्घोष है-

यदा यदा हि धर्मस्य गलानिर्भवति भारत ।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम् ॥
परित्राणाय साधुनां विनाशाय च दुष्कृताम् ।
धर्मसंस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे युगे॥

सन्दर्भ:

- ऋग्वेद
- ईशोपनिषद
- श्रीमद्भगद्गीता, गीता प्रेस, गोरखपुर
- स्वामी सहजानन्द सरस्वती:ज्योति कलश,महाचन्द्रप्रसादसिंह, प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली, २०१४
- कुरुक्षेत्र, रामधारी सिंह दिनकर, राजपाल एंड सन्स, नई दिल्ली,१९९०